कहानी

पोस्टकार्ड

पूजा गुप्ता

तुम फिर आ गईं मांजी!

डाकघर के बड़े क्लर्क ने उस वृद्ध महिला को झिड़कते हुए कहा, जिसके तन पर एक सादी-सी सफेद साड़ी थी. चेहरे की झुर्रियों में आंखों से आंसू बह रहे थे, मगर उन आंखों में एक उम्मीद अभी भी बाकी थी, जिसने उसे बोलने पर मजबूर कर दिया,बड़े क्लर्क जी, ध्यान से देखना, लखनऊ से मेरे बेटे की चिट्ठी आज जरूर आई होगी.

बड़े क्लर्क ने चिढ़कर कहा, मांजी, मैं तुमसे पिछले दस साल से लगातार कह रहा हूं कि जिस दिन तुम्हारा कोई पत्र आएगा, मैं खुद तुम्हारे पास पहुंचा दूंगा. भगवान के लिए तुम यहां बार-बार मत आया करो.

मांजी ने साड़ी के पल्लू से आंखें पोंछीं और भारी कदमों से चली गईं.

ये कौन थीं यह बूढ़ी ?शर्मा जी ने बड़े क्लर्क से पूछा, जो शहर के डाक अधीक्षक थे और यहां की डाक व्यवस्था का जायजा लेने आए थे.

कुछ मत पूछिए साहब! बड़ी विचित्र कहानी है मांजी की.

बड़े क्लर्क उदास स्वर में बोले, मांजी कभी इस कस्बे की सबसे सुखी महिला हुआ करती थीं, लेकिन पति के देहांत के बाद इनकी खुशियों पर जैसे अंधेरा छा गया. इन्होंने अपने इकलौते बेटे अजय की परवरिश के लिए सारी जमीन-जायदाद बेच दी. घर गिरवी रख दिया. खुद दूसरों के कपड़े सिलती रहीं, मगर बेटे को अच्छे से अच्छा पहनाया और खिलाया. बड़ा होने पर अजय को पढ़ाई के लिए शहर भेजा, जहां से अजय डॉक्टर बनकर लौटा.

कुछ दिनों तक सब ठीक-ठाक रहा. एक दिन खबर आई कि अजय को लखनऊ के एक बड़े अस्पताल में नौकरी मिल गई है. न चाहते हुए भी बेटे के उवल भविष्य के लिए मांजी ने उसे लखनऊ जाने दिया. अजय ने मां से वादा किया था कि पहुंचते ही पत्र लिखेगा, मगर आज बीस साल होने को हैं, वह पोस्टकार्ड नहीं आया. बेटे के पत्र की आस में मांजी पागल-सी हो गई हैं. इधर-उधर भटकती फिरती हैं, हर किसी से पूछती हैं कि उनके बेटे का पोस्टकार्ड तो नहीं आया. लोग उन्हें पागल कहकर मजाक उड़ाते हैं और कभी-कभी खाली कागज देकर कहते हैं कि बेटे का पत्र है. मांजी खुशी से झूम उठती हैं और जब पता चलता है कि मजाक था, तो चुपचाप मंदिर की सीढ़ियों पर बैठकर रोने लगती हैं. रात को अपने जर्जर मकान में जाग-जागकर दीवारों से अपने अजय की बातें करती रहती हैं.

बड़े क्लर्क ने चश्मा उतारकर अपनी नम आंखें पोंछीं और बोले, मुझसे मांजी का यह हाल देखा नहीं जाता, इसलिए उन्हें देखकर दिल पर पत्थर रखकर डांट-डपट कर भगा देता हूं.

तभी एक आदमी हांफता-हांफता दौड़ता हुआ आया और बड़े क्लर्क से चिल्लाकर बोला,बड़े क्लर्क जी, कमाल हो गया! आज तो मांजी का पत्र आ ही गया है.

चूंकि पत्र पोस्टकार्ड ही था, इसलिए बड़े क्लर्क ने उसे पढ़ा. उसमें लिखा था,मांजी, आशा है आप सुखी होंगी. आपको जानकर खुशी होगी कि परसों ही आपकी पोती की शादी हो गई. आप सोचेंगी कि इतने साल बाद याद किया, दरअसल मांजी काम इतना है कि सांस लेने की भी फुरसत नहीं मिलती. आपको पता हो कि आज मैं शहर के सबसे बड़े अस्पताल का मालिक हूं. शेष फिर कभी लिखूंगा.

तुम्हारा बेटा, अजय

बड़े क्लर्क का सारा शरीर गुस्से से कांप उठा. वे शर्मा जी से बोले, देखा आपने साहब, इतने साल बाद पत्र लिखा भी तो अपनी बेटी की शादी की खबर देने. बेचारी मांजी को पोती तो दूर, यह तक नहीं मालूम कि अजय ने कब और किससे शादी की. खैर, चलिए मांजी को यह पोस्टकार्ड दे आते हैं.

बड़े क्लर्क और शर्मा जी मांजी के उस जर्जर मकान पर पहुंचे. दरवाजे पर काफी देर दस्तक देने पर भी जब मांजी नहीं आईं, तो वे खुद दरवाजा खोलकर अंदर चले गए. मांजी आंगन में सूखे पेड़ के किनारे बैठी थीं.

बड़े क्लर्क ने मांजी को पोस्टकार्ड देते हुए कहा,मांजी, आखिर आज तुम्हारा पत्र आ ही गया.

मगर उनका स्पर्श पाते ही मांजी का निर्जीव शरीर एक तरफ गिर पड़ा, क्योंकि उनके प्राण उड़ चुके थे. बड़े क्लर्क और शर्मा जी स्तब्ध रह गए. वे मांजी की उन खुली आंखों में देखते रह गए,

पुस्तक चर्चा

'गधों का आदमी विमर्श' व्यंग्य का भिन्न तेवर

प्रकाशकांत

कविता, कहानी, व्यंग्य, यात्रा-संस्मरण हाइकु- गोविन्द सेन के सृजन के कई पक्ष हैं. इसके अलावा एक और महत्त्वपूर्ण बात यह कि वे हिंदी-निमाड़ी दोनों में सृजनरत रहे हैं. वे पश्चिम मध्य प्रदेश के सुदूर आदिवासी अंचल से सम्बन्ध रखते हैं. इस सबके चलते उनकी जो सृजन-भाषा विकसित हुई है वह इन सबसे निकल कर आई हुई ही है. वे अपेक्षित रूप से थोड़े कम मुखर रचनाकार हैं. उनके यहाँ जैसा कि उनका एक व्यंग्य भी है, कोई डंका नहीं बजता. इसके चलते जो कुछ कहना होता है वह उनकी रचनाएँ कहती हैं. वे अपने को लगभग बाहर या हाशिये पर रखते हैं. अपने व्यंग्य लेखन में भी !

'साहब का बसन्त' के बाद अभी उनका दूसरा व्यंग्य संग्रह आया है, 'गधों का आदमी विमर्श' (न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली) जिसमें पचास से अधिक व्यंग्य आलेख संकलित हैं. ये सब और जैसे कि उनके पहले के अधिकतर आलेख भी रहे हैं, ठहाकेदार हास्य और आक्रामक व्यंग्य के बीच के हैं. ना वे सस्ते लतीफ़े की हँसी पैदा करते हैं और न गर्दन उतारते मिलते हैं. और ऐसा किसी ख़ास कोशिश के चलते नहीं हुआ है, ना ही व्यंग्य की किसी गम्भीर बहस के कारण ही होता दिखता है. उनके व्यंग्य लेखन ने अपनी यात्रा के बीच खुद ही अपने लिए यह जगह निकाली है. इसी कारण उनके कुछ व्यंग्य लगभग अंडरटोन चलते हैं. जिनमें ऊपरी तौर पर बहुत ज़्यादा खदबदाहट नहीं महसूस होती. अपने बाहरी ढाँचे में बहुत महीन होते हैं. भीतर से चुभन पैदा करते हैं. उनके व्यंग्य सामान्यतया किसी वरदान में मिले ब्रह्मास्त्र की भूमिका में नहीं होते. उन्हें पता होता है की उन्हें अंततः कोई कुरुक्षेत्र नहीं जीतना है. इसीलिए वे अपने लेखन में किसी रथी-महारथी की मुद्रा में नहीं होते. अपने उपलब्ध शस्त्र के साथ अपने हिस्से का अत्यंत सीमित या छोटा महाभारत लड़ने वाले पैदल सैनिक बने रहते हैं. इस दूसरे संग्रह के लेखों में वे ऐसे ही सैनिक की तरह दिखाई देते हैं.

पत्नी, नेता जैसे पिटे-पिटाए विषयों पर आम तौर पर यहाँ व्यंग्य नहीं है. फूहड़ता की हद तक जानेवाली मंचीय हास्य कविता पहले ही ऐसे विषयों का मलीदा बना चुकी है. आजकल वह राष्ट्रवाद, सनातन वगैरह जैसे विषयों का मलीदा बनाने में लगी है.

संग्रह में सड़क हमारे बाप की है, गधों का आदमी विमर्श; भीड़, भगदड़ और मौक्ष; ज्ञान बाटते चलो, रेवड़ी ने अंधा बना दिया, चतुर बिल्ली और चाटुकार चूहे, झोली, झोला और झोल; घोड़े भी कभी गधे थे जैसे महत्त्वपूर्ण व्यंग्य हैं. जिनमें लहू-लुहान कर देने की हद तक वे सर्जरी नहीं करते. ऑपरेशन टेबल के सामने थोड़ी-सी कोमल मुद्रा में रहते हैं. अतिक्रमण, पुरस्कार-सम्मान, सीकरी, चुनाव, सत्ता की आत्म मुग्धता, जनसेवा, गधा और आदमी, रीढ़, आत्मा, रेवड़ियाँ जैसे कई विषयों पर इनमें व्यंग्य हैं. जिनमें वे अपने व्यंग्य को बेदम करने की हद तक नहीं ले जाते. बारीक-सी पिन की चुभन, महीन-सी चिकौटी तक लाकर छोड़ देते हैं. इसके लिए जिस व्यंग्य भाषा का उपयोग करते हैं उसमें लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों के मुखड़े-टुकड़े, लोक में प्रचलित कहावतें-मुहावरे, नेताओं के सूक्तिनुमा आत्मप्रलाप इत्यादि शामिल होते हैं. इनके अलावा नीति कथाओं को भी माध्यम बनाते हैं. संग्रह के आलेखों में इस सब को देखा जा सकता है.

गधों का आदमी विमर्श
(व्यंग्य संग्रह)
गोविंद सेन
कीमत -225 रूपए
न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

एक दिल था सीने में...

गोविंद शर्मा

समाज की पंचायत में अपनी तरह का पहला प्रकरण था.अपने कानूनी माता-पिता को सबके सामने सवालों के घेरे में खड़ा कर दिया.

सुविधाभोगी समय में पैसों के समंदर में तैरते इस बच्चे को पता नहीं क्या हुआ जो बड़े शहर के बंगले को छोड़ गांव की मढ़ई में रहना चाहता है.अपने कानूनी माता-पिता को छोड़कर अपनी गरीब माँ के पास आना चाहता है. उसे लगता है दत्तक प्रक्रिया कानूनी तौर पर भले ही शब्दशः ठीक हो,बच्चे के साथ हर हाल में अन्याय होगा. परिजनों ने लाख समझाया भाई नवजात अपने हर निर्णय के लिए अपने बायोलॉजिकल माता-पिता पर निर्भर रहता है और समाज,कानून दोनों इसे मान्यता भी प्रदान करते हैं.पता नहीं उस तरुण को किसने क्या पट्टी पढ़ाई कि वह किसी मान्यता,कानून और तर्क को मानना ही नहीं चाहता था.

आप होंगे रईसजादे.आप ने कानूनन मुझे गोद लिया होगा. आपने दरअसल मेरी गरीब माँ को बरगलाकर ऐसा करने पर मजबूर किया होगा. मैं मान नहीं सकता कि कोई भारतीय माँ अपने बेटे को अपने से दूर होने दे. मैं मान नहीं सकता कि गरीबी इसका ठोस कारण होगा. जानवर घोर संकट और असुविधाओं में भी अपने बच्चों की पूरी सुरक्षा करते है,फिर मेरी बायोलॉजिकल माँ तो जीता जागता इंसान है. आप ने बड़े भाई होने का फायदा उठाया.आपने इमोशनल ब्लैकमेलिंग की होगी.आपने अपने बेहिसाब पैसे का लालच दिया होगा.आपने अपनी गरीब बहन को बहकाया होगा कि तेरे बेटे की जिंदगी बन जायेगी.आपने उसे पूछा होगा कि तेरा बेटा इतनी बड़ी इंडस्ट्री का मालिक बनेगा क्या तू नहीं चाहती. आपने रिश्तेदारों से दबाव डलवाया होगा कि तेरे दो बेटे हैं,कम से कम एक की किस्मत तो सुधर जायेगी.आप ने मेरी लाचार माँ को इतनी मानसिक प्रताड़ना दी होगी कि वह अपनी कोख से जन्मे बच्चे को आपकी गोद में डालने को विवश हो गई होगी.बच्चा अपने भाई से मिलने अक्सर गाँव जाता था.कभी भाई को अपने पास शहर में बुला लेता था.शहरी चकाचौंध,महलनुमा बंगला भाई को बहुत भाता लेकिन अपने भाग्य का लिखा मानकर वह संतोष कर लेता.आश्चर्य यह कि भाई हमेशा बच्चे को समझाता देखो अब मामा ही तुम्हारे पिता हैं,मामी को माँ मानने में संकोच कैसा? भाई बच्चे से अधिक परिपक्व था,वह अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति से वाकिफ था.उसका अक्सर आना और बच्चे का अपने कानूनी माता पिता पर भड़कना लोगों के मन में संदेह पैदा करता की हो न हो बच्चे को उसका भाई ही भड़काता हो. बच्चे के अपने दोस्तों की फेहरिस्त बड़ी नहीं थी,बमुश्किल दो दोस्त थे.दोस्तों की पृष्ठभूमि आर्थिक रूप से संपन्न थी. कानूनी पिता को यह दुख साल रहा था कि ऐसी क्या कमी रह गई जो बच्चा उनके पास न रहकर वापस गाँव में अपने कमजोर आर्थिक स्थिति वाले जीवन को जीना चाहता था.पिता जानते थे कि सुविधाओं के बीच पला बच्चा गरीबी की जिंदगी आसानी से नहीं जी पायेगा. कोर्ट तक मामला पहुंचा तो पता नहीं क्या क्या बातें होंगी. संपत्ति के उत्तराधिकारी का मामला उठेगा,अंतिम संस्कार को लेकर लोग कहानियां गढ़ेंगे. कुल मिलाकर अब तक कमाई इज्जत और धन दौलत दोनों ही अनजाने लोगों के हाथों बर्बाद होने है.कानूनी माता पिता इस प्रकरण के बाद से भरपेट खा नहीं पाते,ठीक से सो नहीं पाते.उन्हें परिचित,मित्र और रिश्तेदार नित्यप्रति नई सलाह दे जाते.इन सलाहों से उनका तनाव और बढ़ जाता. अपनी बहन के ताउम्र ऋणी रहे,उसके कठिन समय में सदा उसके साथ रहे.बहन के बच्चों की बेहतरीन तालीम की पूरी व्यवस्था की.उनके पास धन भी बहुत था और सहयोग करने का मन भी था.

दत्तक पुत्र के दिए दंश में जी रहे दंपत्ति ने अपने कानूनी सलाहकार को बुलाकर अपनी सारी चल अचल संपत्ति अनाथ आश्रम को मरणोपरांत दान लिख दी.दत्तक पुत्र ने संदेश भिजवाया कि अपने दाह संस्कार की व्यवस्था भी कर लेना.दंपत्ति ने आपस में सलाह की, करीबी दोस्तों और परिजनों से बात की और अंत में निर्णय लिया कि मरणोपरांत अपनी देह मेडिकल कॉलेज के बच्चों के अध्ययन हेतु दान दे देंगे.डॉक्टर बच्चे भी देख लेंगे कि इस दंपत्ति के सीने में एक दिल भी था.

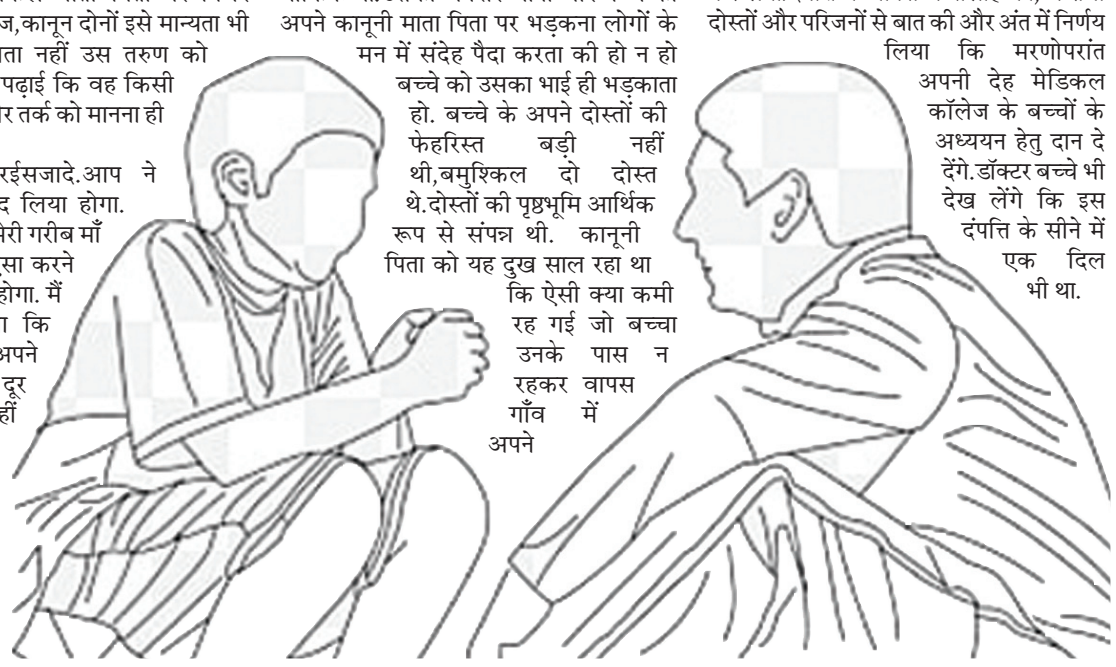

लघुकथा

आतंक

मीरा जैन

डिंपी!

आजकल कुत्ते बहुत हिंसक होते जा रहे हैं काटने की नित नवीन घटनाएं सुनने में आ रही है तुम जिस रास्ते से रोज पैदल कोचिंग जाती हो उस रास्ते मे भी कुत्तों की भरमार है यह लो छोटी सी बेंत , इसे मै खास तौर तुम्हारे लिए ही खरीद कर लाया हूं अब रोज इसे अपने साथ लेकर जाना, खुदा ना खस्ता कभी कोई कुत्ता पीछे पड़ जाये तो यह बेंत तुम्हारे बहुत काम आएगी.

पहले तो डिम्पी ना-नुकुर करती रही लेकिन पिताजी की जिद के आगे उसकी एक न चली मन मार कर उसे वह बेंत लेनी ही पड़ी और पिताजी का मान रखने के लिए प्रतिदिन कोचिंग लेकर जाना उसकी अनिवार्यता बन गई.

एक दिन घर में घुसते ही डिंपी चहकते हुए एक सांस में सब बोल गई-

पापा -पापा ! आपके द्वारा दी गई है यह बेंत मेरे काम आ ही गई आज एक मेरे पीछे पड़ ही गया था वह झपटने की मुद्रा में जैसे ही मेरे करीब आया मैने जैसे ही बेंत घुमाई, वह ऐसा भाग कि पीछे पलट कर भी नहीं देखा .

देखो बेटी! मैने सही कहा था ना कि आजकल कुत्ते बहुत हिंसक होते जा रहे हैं.

इस बार गंभीर हो डिंपी बोली-

लेकिन पापा ! वह कुत्ता जानवर नहीं था.

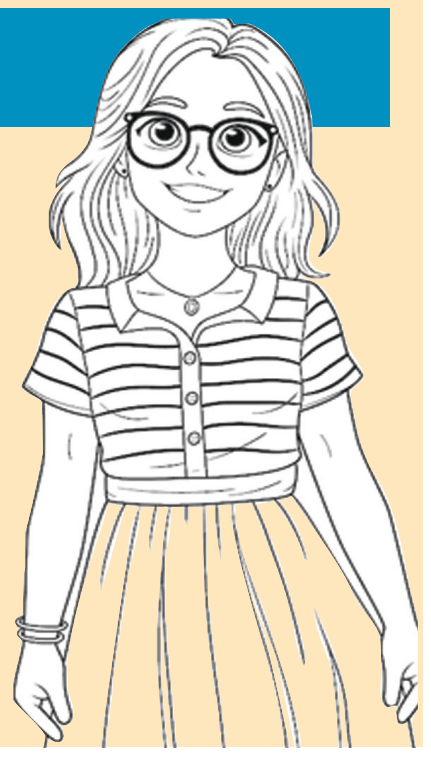

क्लास by बड़े भाई

दिशा सही नही है...

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

यह वाक्य मेरा नही है, दरअसल यह किसी विद्वान् से उनके अनुयायियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर था और यह उत्तर ही इसका शीर्षक है. हुआ कुछ ऐसा था कि लोगों ने गॉव आए एक विद्वान् से अपनी अपनी समस्याओं के लिए समाधान पूछा था और वो विद्वान् उन सभी के सवालों का एक ही उत्तर दे रहे थे कि 'दिशा सही नही है'.

जैसे यदि किसी ने पूछा कि वो मेहनत करते हैं लेकिन वैसा फल नही मिलता तो उनका जवाब होता कि दिशा सही नही है.. फिर जब किसी ने पूछा कि उन्हें गुस्सा बहुत आता है इससे वो सब बिगाड़ लेते हैं तो भी उनका उत्तर होता कि दिशा सही नही है.. इस तरह वो सभी का एक ही जवाब दे रहे थे.. लोगों को आश्चर्य हुआ कि हर प्रश्न का एक ही उत्तर कैसे हो सकता है. सबने मिलकर बड़ी विनम्रता से इसके पीछे का कारण पूछा.. तब विद्वान् ने हँसते हुए जवाब दिया कि इस संसार में हर चीज का कम से कम एक अच्छा उपयोग हो सकता है..कुछ जिसे हम अवगुण कहते हैं उसे भी यदि दिशा दी जाये तो वह कई बार अवगुण नही रह जाता..जैसे गुस्सा यदि हम कहीं गलत होता देखकर करें , कुछ गड़बड़ होता देखकर करें तो वह गुस्सा बुरा नही है जैसे महाभारत में श्रीकृष्ण को भी कई जगह पर क्रोध आता है लेकिन वह क्रोध धर्म का समर्थन कर रहा था.. इसी तरह कुछ अच्छी बात जैसे कि मेहनत करना अच्छा है लेकिन उसका सही परिणाम मिले, इसके लिए उस मेहनत की दिशा लक्ष्य की ओर होनी चाहिए न कि भटकी हुई वर्ना कभी उसका मनचाहा परिणाम नही मिलेगा..

इसलिए मैंने आप सभी के हर सवाल में एक ही शब्द कहा कि दिशा सही नही है.. अपने कर्मों की दिशा जैसी होगी फल उसी के हिसाब से आएंगे.. तो आप सभी अपने गुस्से को ,अपनी मेहनत को या जो भी हो आपमें, उसे सही दिशा दें तो कोई समस्या नही रहेगी...आपके अवगुण भी कई बार गुण से अधिक सराहनीय हो जायेंगे..और उन्हें जिहे हम गुण कहते हैं उस स्तर का सम्मान मिल जायेगा. तो समझ आया कि मैंने क्यों कहा दिशा सही नही है...यह कहकर वह विद्वान् हंसने लगे..

कविता

चुप्पियों की वर्तनी

पारमिता षड़ंगी

जो रंगीन शाम ओढ़ी थी मैंने
कैस कहूँ, उसे कैसे उतारी
तेरी यादों ने जो पहरा रखा था
मेरे सपनों पर,
कैसे कहूँ कि वह रात कैसे गुज़ारी

वक़्त ने सवाल पूछे,
नींद ने जवाब देने से इंकार कर दिया,
मैं जागती रही अपने ही भीतर,
और रात बाहर किसी की
नींद में धीरे-धीरे खोने लगी .

मैंने जाना
कुछ रातें काटी नहीं जातीं,
बस सह ली जाती हैं
नोटबुक के अंदर
सूखे गुलाब के नीचे
पड़े-पड़े शब्दों के अर्थ की प्रतीक्षा में .
यहाँ ख़ामोशी भी
एक अधूरा वाक्य बन जाती है,
और पीड़ा विराम नहीं,
दीर्घ विराम माँगती है .

समझ में आया कि
यादें लौटकर नहीं आतीं,
वे बस टिक जाती हैं
हमारे होने के तरीक़े में,
हमारी चुप्पियों की वर्तनी में .

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी